सम्पादकीय / Editorial

भारतीय दृष्टि एवं आधुनिक वैश्विक परिदृश्य

Indian Vision and Modern Global Scenario

https://doi.org/10.5281/zenodo.16966585

वर्तमान परिदृश्य में विश्वभर के अनेक देशों में युद्ध और संघर्ष के कारण अशान्ति का वातावरण फैला हुआ है। मानव आज विज्ञान और तकनीकी के समृद्ध युग में जी रहा है। अनेक प्रकार के नवीन आविष्कार भी हो रहे हैं, परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ये सभी आविष्कार मानव–जीवन को खुशहाल बनाने में साधन मात्र हैं। इनका उपयोग मानव–कल्याण हेतु ही किया जाना चाहिए, न कि किसी को नष्ट करने में।

आज के मनुष्य की सामान्य प्रवृत्ति – विचार और क्रिया के असंगत व्यवहार के रूप में दिखती है। जब हमारा बोध हमारी क्रियात्मकता में प्रतिफलित न हो तो हमें लक्ष्य की प्राप्ति किस प्रकार होगी। मनुष्य अपने जीवन में अनेक ऐसे सैद्धान्तिक मानदण्ड चिह्नित करता है, जो सामाजिक समरसता, मानव–कल्याण एवं मनुष्य और प्रकृति के साहचर्य के मूल्यबोध के कारक कहे जा सकते हैं, जिनसे रामानुशासित समाज एवं रामायणकालिक रामराज्य का चित्र उभरने लगता है। सैद्धान्तिक मानदण्डों की अनुसूची में अनेक नाम इतिहास के झरोखों से हमें पुकारते दिखाई पड़ते हैं। इनमें श्रीराम, श्रीकृष्ण, भीष्म, विदुर, महावीर स्वामी, महात्मा बुद्ध, सम्राट अशोक, आचार्य शङ्कर, आचार्य अभिनवगुप्त, कबीरदास, तुलसीदास और उन्नीसवीं–बीसवीं शताब्दी के युगपुरुष स्वामी दयानन्द सरस्वती, महात्मा गाँधी इत्यादि प्रमुख हैं। उपर्युक्त ये सभी व्यक्तित्व ऐसे हैं, जिन्होंने उन्नत, प्रगतिशील, समरसतापूर्ण एवं स्फूर्त प्राकृतिक जीवन की गोद में प्राणिमात्र के सुखद अनुभव के मूल्यात्मक प्रतिमान स्थापित किए।

इन सभी के वैचारिक शिल्प में एक साम्य है। इन्होंने अपने विचारों से सिद्धान्त के रूप में जैसा अनुपम भवन निर्मित किया, वैसा ही सिद्धान्तानुवर्ती अनुपम जीवन अपने व्यवहार से जीकर भी दिखाया। श्रीराम के शासन का सुव्यवस्थित संचालन आज के समय में रामराज्य के नाम से रूढ़ हो गया है और जब भी कभी अच्छे शासन का उल्लेख करना हो, तो उसे 'रामराज्य' से उपमित किया जाता है। श्रीराम के राज्य में सैद्धान्तिक आदर्श एवं समाज में व्यावहारिक रूप में उनका प्रतिफलन तात्कालिक आदर्श एवं खुशहाल जीवन दर्शन का प्रकाशन करते हैं। शान्तिपूर्ण सह–अस्तित्व, प्राणिमात्र के अधिकारों की रक्षा एवं सम्मान, सत्ता का विकेन्द्रीकरण और अन्तिम समय तक युद्ध को रोकने का प्रयास श्रीराम को 'मर्यादा पुरुषोत्तम' के आदर्श व्यक्तित्व के रूप में सुशोभित करते हैं। देवी सीता के अपहरण के पश्चात् रावण को शान्तिपूर्ण पद्धति से सीता को लौटाने का आग्रह एवं युद्ध के स्थान पर शान्ति की बात करना उनके कल्याणकारी संदर्श के प्रतिबिम्ब कहे जा सकते हैं। श्रीराम के समान श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन इसी प्रयास में निकला कि कैसे सामाजिक विसंगतियों एवं अनुचित व्यवहार को सुसंगत एवं सुसंस्कृत बनाया जाए। भारतीय संस्कृति में श्रीकृष्ण समदर्शी, विश्व–ब्रह्माण्डीय जीवन एवं स्पन्दायमान चराचर जगत् के मौलिक स्पन्दन के उत्स एवं प्रस्तोता हैं। श्रीकृष्ण के जीवन में सिद्धान्त और व्यवहार का जैसा संतुलन दिखता है, उसी से वे उपनिषत्सारभूत श्रीमद्भगवद्गीता के प्रवाचक बनकर अर्जुन जैसे नर–प्रतिनिधि को उपदेश देते हैं और उस सम्पूर्ण मानव सभ्यता के समक्ष कर्तव्य एवं धर्मानुप्रेरित कर्म के मार्ग का प्रवर्तन करते हैं। श्रीकृष्ण के चिन्तन में समष्टिपरक विश्वचेतना है, जो प्राणिमात्र के व्यष्टिभाव से लेकर स्वरूप–विस्तार के रूप में विश्वरूप शिवचेतना तक परिव्याप्त है। श्रीकृष्ण का सम्पूर्ण जीवन मानव–संघर्षों के समाधान एवं विश्व–शान्ति की स्थिर परिणति के प्रयास में निरत प्रतीत होता है। शान्ति के प्रयास में उन्होंने मान–अपमान, यश–अपयश, हानि–लाभ से परे अपनी प्रतिष्ठा तक को दाव पर लगा दिया। कौन नहीं जानता कि जरासंध के द्वारा मथुरा पर बार–बार आक्रमण किए जाने से परेशान हुए मथुरावासियों के लिए श्रीकृष्ण ने अपनी जन्मस्थली को छोड़कर समुद्र के किनारे 'द्वारका' नामक नगर बसाया। इसी के कारण उन्हें 'रणछोड़दास' की संज्ञा मिली। महाभारत के युद्ध को रोकने का प्रयास श्रीकृष्ण ने अन्तिम क्षण तक किया और इसके लिए दुर्योधन के द्वारा किए गए अपमान को भी उनके द्वारा सहन किया गया। श्रीकृष्ण का जीवन तो मानो इस विश्व में शान्ति स्थापित करने में ही निकल गया। यही प्रयास महाभारत में भीष्म पितामह और विदुर के द्वारा भी किया गया। धृतराष्ट्र को दुर्योधन की अनीति एवं अत्याचार के विरुद्ध उनके द्वारा बार–बार सचेत किया गया एवं शान्तिपूर्ण तरीके से पाण्डवों को उनके अधिकार सौंपने की याचना की गई, किन्तु वह सब सम्भव नहीं हो सका। परिणामस्वरूप संसार महाभारत के महायुद्ध का साक्षी बना।

महावीर स्वामी और गौतम बुद्ध के द्वारा हिंसा का प्रतिरोध कर विश्व–शान्ति का सन्देश ही दिया गया। परवर्ती काल में बुद्ध एवं उनके जीवन–दर्शन से प्रेरणा पाकर युद्ध का मार्ग त्यागकर सम्राट अशोक ने बुद्ध, संघ एवं धम्म (धर्म) का मार्ग

चुनकर अपना सम्पूर्ण जीवन मानव–कल्याण में समर्पित कर दिया और वे अशोक महान् कहलाए। अशोक के सम्बन्ध में एक लोकश्रुति है कि कलिङ्ग युद्ध की जीत के पश्चात् जब अशोक अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे और अपनी विजय का यशोगान कर रहे थे, तभी उनके गुरु उपगुप्त ने उन्हें युद्धभूमि जाकर देखने को कहा कि किसकी विजय हुई है और किसकी हार? उपगुप्त के प्रस्ताव पर अशोक युद्धभूमि में गए, जहाँ उन्हें केवल चीखें और पुकारें सुनाई दी। इतना ही नहीं कलिङ्ग देश की जनता सम्राट अशोक को कोस रही थी। यह सब दृश्य देखने के पश्चात् अशोक से उपगुप्त ने प्रश्न किया कि राजन् अब बताइये यह आपकी जीत है या हार। इस घटना से अशोक को आत्मग्लानि हुई और वे पश्चाताप की अग्नि में दहकने लगे। तब उन्होंने संकल्प किया कि मैं बुद्ध और उनके धम्म के मार्ग पर ही चलूँगा एवं विश्व–शान्ति एवं मानव–कल्याण में ही अपना सम्पूर्ण जीवन समर्पित कर दूँगा। इस संकल्प के क्रियान्वयन की फलश्रुति यह थी कि अशोक के पुत्र महेन्द्र एवं पुत्री संघमित्रा धम्म के प्रचार–प्रसार हेतु इण्डोनेशिया और श्रीलंका तक गए।

आचार्य शङ्कर और अभिनवगुप्त जैसे महापुरुषों ने आत्मचेतना, स्वरूप–प्रथन एवं विश्वमयी दृष्टि को विकसित करने पर बल दिया। इन दार्शनिकों ने भारत की निगमागमीय संस्कृति की समन्वयात्मक–दृष्टि का प्रकाशन किया। आचार्य शङ्कर में सगुण और निर्गुण भक्ति के साथ–साथ शैव, वैष्णव एवं शाक्त मतों का अद्भुत समन्वय दृष्टिगत होता है, जो कहीं न कहीं आध्यात्मिक शान्ति के पथ की तरफ उन्मुख करता है। आचार्य अभिनव का सम्बन्ध एक ऐसे समय से है, जब काश्मीर में वैष्णव, शाक्त, शैव, कुल, क्रम, स्पन्द जैसे अनेक साधना एवं दर्शन के सम्प्रदायों की मुखरता थी, किन्तु उन्होंने अपने ग्रन्थों में सभी सम्प्रदायों के तात्त्विक चिन्तन को एकसाथ समग्र रूप मे प्रस्तुत कर अपनी समन्वयात्मक–दृष्टि को व्यक्त कर तात्कालिक पारस्परिक वैचारिक संघर्षों को बहुत सीमा तक समाप्त कर मानव–कल्याण में अपनी भूमिका का निर्वाह किया। कालान्तर में कबीर, तुलसीदास आदि सन्तों के द्वारा सामाजिक समरसता, सह–अस्तित्व एवं शान्तिपूर्ण जीवन की दिशा में किए गए सत्प्रयास मध्यकालिक भक्ति–साहित्य के मुख्य लक्ष्य के पर्याप्त उदाहरण माने जा सकते हैं। इस काल में सभी सन्तों का एक ही लक्ष्य था कि भिन्न–भिन्न पंथों, सम्प्रदायों, मतों, आस्थाओं में विभाजित समाज को कैसे सहभाव का पाठ पढ़ाया जाए। किस प्रकार आपसी विवादों एवं संघर्षों से मुक्त होकर यह विश्व शान्ति के मार्ग पर अग्रसर हो।

उन्नीसवीं और बीसवीं शताब्दी में स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं महात्मा गाँधी का चिन्तन पारस्परिक संघर्ष, विद्वेष, किसी भी प्रकार की हिंसा के प्रतिरोध एवं सामाजिक समरसता में ही मुखर होता सा परिलक्षित होता है। इस प्रकार भारतीय इतिहास के अवलोकन से यह कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण मानव सभ्यता का कल्याण शान्ति के पथ में ही है, ऐसी भारतीय इतिहास–दृष्टि है। इतिहास साक्षी है कि जिन–जिन लोगों अथवा जिन–जिन देशों ने शान्ति की भाषा छोड़कर युद्ध और अशान्ति की भाषा का अनुसरण किया, वे इतिहास में या तो काल–कवलित हो गए या फिर मानवता के कलङ्क एवं शत्रु के रूप में अविस्मरणीय। अतीत में जब भी ऐसी घटनाएँ हुई हैं, उनके पीछे व्यक्ति की अपनी महत्त्वाकांक्षा, स्वार्थपरता एवं झूठी यश–लोलुपता मुख्य कारण रहीं हैं। उन लोगों के चिन्तन में लोक न होकर उनकी अपनी स्वार्थपरता दिखती है। किसी भी शासक अथवा प्रशासक का धर्म है कि वह लोक के लिए सोचे, लोक–हित में कार्य करे। वह लोक का प्रतिनिधि मात्र है। वह लोक के लिए है, न कि लोक उसकी स्वार्थपूर्त्ति के लिए। जितने भी प्रकार के संसाधन अथवा आविष्कार हैं, वे सभी मानव सभ्यता के सुखद, सरल एवं शान्तिपूर्ण जीवनयापन के लिए ही होते हैं।

सम्पूर्ण विश्व एक मानव समुदाय होने के साथ–साथ अनगिनत प्राणियों के जीवन–यापन की आश्रय–स्थली भी है। इस भूमि पर सभी का बराबर का अधिकार है। लौकिक अथवा अलौकिक किसी न किसी संयोग से सभी अपने–अपने जीवन को प्राप्त कर किंचित् समय के लिए यहाँ आते हैं। किसी के युद्धाकांक्षी होने में, किसी की कोई भूमिका नहीं है, तो फिर अपनी महत्त्वाकांक्षा एवं स्वार्थसिद्धि हेतु हमें किसी दूसरे के जीवन को छीनने का अधिकार कैसे हो सकता है। जब हम किसी और के साधन नहीं बन सकते तो किसी और को हम साधन कैसे बना सकते हैं। युद्ध देखने में दो व्यक्तियों अथवा दो देशों के मध्य प्रतीत होता है, किन्तु असंख्य उन लोगों अथवा प्राणियों का जीवन समाप्त हो जाता है, जिन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता कि हम किस उद्देश्य से युद्ध कर रहे हैं। वे युद्ध करते हैं, बस इसलिए कि उन्हें आदेश मिला है।

– प्रो. प्रतापानन्द झा